"परः सन्निकर्षः संहिता" एक विश्लेषण

शोधार्थी
पंकज देवी
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग,
महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय, (हरियाणा

शोध निर्देशक
डॉ. सुरेन्द्र कुमार
प्रोफेसर
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग, रोहतक
म०द०वि० रोहतक (हरियाणा)

सार्थक पदों के समुच्चयात्मक वाक्य में पदान्त एवं पदादि वर्णों का सन्निकर्ष रहता है, जिससे कभी-कभी उच्चारण आदि में कुछ कठिनता हो जाती है। तब उनमें अनेक प्रकार के उच्चारण संबंधी परिवर्तन आ जाते हैं। उच्चारण की ये विशेषताएं दो वर्णों के संयोग तथा दो पदों के संयोग में पाई जाती है। इन्हें इनके स्वरूप एवं प्रकृति के आधार पर भिन्न - भिन्न नामों से पुकारा जाता है। संस्कृत व्याकरण में इन उच्चारण संबंधी परिवर्तनों के लिए ही 'संधि' का विधान किया गया है। प्राचीन काल में 'संधि' के लिए ही 'संहिता' शब्द का प्रयोग किया जाता था। इसलिए कतिपय आचार्य संहिता और कतिपय आचार्य संधि शब्द का प्रयोग करते हैं।

संहिता और संधि :- संहिता और संधि एक ही अर्थ के वाचक हैं। दोनों का अर्थ है - मेल। परंतु इन दोनों पदों में प्रयोगगत भेद है। वर्णों का अतिशय सन्निकर्ष संहिता है और संहिता के फलस्वरुप प्राप्त कार्य, विकार अथवा फल को संधि कहा जाता है। संहिता में किसी भी वर्ण में परिवर्तन या विकार के विषय में नहीं कहा गया है। यह दोनों पद व्याकरण में विद्यमान दो पृथक् विषय हैं।

संहिता :- वर्णों का अव्यवहित रूप से उच्चारण

संधि :- वर्णविकार (transformation on letters)

संधि प्रकरण के सभी सूत्र संहिता अधिकार में ही आते हैं। संहिता के होने पर ही संधि कार्य होते हैं। संहिता पूर्वावस्था है और संधि परवर्ती अवस्था। विकार के लिए सन्निकर्ष अत्यंत आवश्यक है[1], क्योंकि संहिता में ही संधि का अस्तित्व निहित है। शाकटायन - प्रक्रिया संग्रह में संधान, संधि और संहिता को समानार्थक माना गया है।[2] इसके अतिरिक्त संधि के पर्यायवाची के रूप में 'संस्कार'[3] शब्द का भी प्रयोग मिलता है। पाणिनीय अष्टाध्यायी में भी आचार्य ने 'संहिता'[4] शब्द का ही प्रयोग कर संधि संबंधी सूत्रों को उस संहिता अधिकार के अंतर्गत ही पढा है। 'संधि' शब्द के लिए कोई संज्ञा सूत्र नहीं पढा है। अतः कहा जा सकता है कि संहिता अर्थात् वर्णों के अतिशय सामीप्य के फलस्वरुप होने वाले यणादि कार्य के लिए 'संधि' शब्द का व्यवहार किया जाता है।

संस्कृत व्याकरण में तीन प्रकार की विधि है - 1.वर्ण - विधि 2.पद - विधि व 3.वाक्य - विधि। संधि 'वर्ण - विधि' के अंतर्गत आती है, क्योंकि संधि करते समय दो वर्णों के मध्य या उनके स्थान पर ही विकार आता है, यथा - दधि + अत्र = दध्यत्र। परंतु प्रातिशाख्यकार पदों को सिद्ध मानकर संहिता का विधान करते हैं। उनके अनुसार पद के मध्य में संहिता नहीं होती, अपितु संहिता पदान्त व पदादि के मध्य होती हैं। ऋग्वेद प्रातिशाख्यकार शौनक ने कहा है कि काल के व्यवधान के बिना जो पदान्तों का पदादियों के साथ मेल संपादन करती है, वह संहिता कहलाती है।[5] इससे स्पष्ट है कि संहिता पदों पर आधारित है पदों के मिलने से ही संहिता निष्पन्न होती है। अथर्वप्रातिशाख्य में कहा भी गया है, - यथा तंतूनां वासो यथा दारूशिलामृदां प्रासादस्तथा च सन्धिशास्त्राणि पदसंधानार्थं प्रोक्तानि।[6] अर्थात् जिस प्रकार तंतुओं से वस्त्र का निर्माण होता है और जिस प्रकार लकड़ी, पत्थर और मिट्टी से घर का निर्माण होता है उसी प्रकार संधि के नियम पदों को मिलाने के लिए कहे गए हैं।

वस्तुतः संहिता पद दो अर्थों में प्रयुक्त होता है - 1. ऋग्वेद आदि मंत्रों के संहिता पाठ के लिए तथा काल व्यवधान के बिना वर्णों अथवा पदों की अत्यधिक सन्निधि के लिए। संधि केवल पदान्त व पदादि के मध्य ही नहीं, अपितु अखण्ड पद में भी देखने को मिलती है, - राम +आत् =रामात्। पदान्त व पदादि के मध्य भी वर्णों में ही विकार आता है। सन्धि करते समय पद या पदों के अर्थ को जानने की आवश्यकता नहीं, अपितु वर्णों पर आधारित होती है। इससे स्पष्ट है कि संधि वर्ण विधि के अन्तर्गत आती है। संधि संहिता के ऊपर ही आश्रित है, अतः संधि को जानने से पूर्व संहिता के विषय में जानना आवश्यक है।

संहिता :- संहिता 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातु से 'निष्ठा' (पा.अ. 2/2/36) सूत्र से 'क्त' प्रत्यय , 'दधातेर्हि' (पा.अ. 7/4/42) से 'धा' को 'हि' आदेश तथा स्त्रीत्व में 'अजाद्यतष्टाप्' (पा.अ. 4/1/4) द्वारा 'टाप्' प्रत्यय लगाकर 'संहिता' शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है - समीप में रखा हुआ। इस प्रकार वर्णों के अतिशय समीप में आ जाने के कारण या उनका मेल हो जाने से संहिता होती है। यथा - 'रामः' इस शब्द में पांच वर्ण हैं, - र्, आ, म्, अ, विसर्ग। इन सभी वर्णों का क्रम से बिना व्यवधान के उच्चारण करना ही 'रामः' इस शब्द का सम्यक् श्रवण कराता है। अतः, 'रामः' इस शब्द में विद्यमान वर्णों के प्रत्येक युग्म में संहिता है। तथा 'दध्यत्र = दधि + अत्र' यहां पर संहिता करते समय 'दधि' व 'अत्र' इन दो पदों के मध्य में 'इको यणचि' (6.1.77) सूत्र से 'इ' को 'य्' विकार हो गया। अतः संहिता वर्णों व पदों, दोनों के मध्य होती है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में कहा गया है कि भिन्न - भिन्न पदों के संयोग से जो संयुक्त रूप निष्पन्न होता है, वह पद-संहिता[7] तथा भिन्न - भिन्न वर्णों के संयोग या मेल को वर्ण - संहिता[8] कहा जाता है। पाणिनीय व्याकरण में संहिता के लिए निम्न सूत्र प्रयुक्त है-

परः सन्निकर्षः संहिता। (पा. अ. 1/4/109)

वृति - परः 1.1, सन्निकर्षः 1.1, संहिता 1.1

सूत्रार्थ - 'वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात्'[9] अर्थात् वर्णों के अत्यंत सन्निधि या सामीप्य की संहिता संज्ञा होती है। इस सूत्र में तीन पद पढे गये हैं - पर, सन्निकर्ष और संहिता।

'पर' शब्द का अर्थ व प्रयोजन :- 'संहिता' इस महासंज्ञा में श्रेष्ठार्थक 'पर' शब्द विशिष्ट अर्थ का बोधक है। 'पर' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थ में होता है। न्यासकार ने कहा भी है कि' पर' शब्द दिगादि अर्थ में भी होता है, तथापि यहां पर अतिशय अर्थ में ग्रहण किया गया है।[10] कौमुदी में 'पर' शब्द श्रेष्ठ या अतिशयित के रूप में लिया गया है।[11] बालमनोरमा, लघुशब्देन्दुशेखर, पदमंजरी आदि में भी पर शब्द का यही अर्थ ग्रहण किया गया है।

'सन्निकर्ष' शब्द का अर्थ व प्रयोजन :- 'सन्निकर्ष' शब्द का अर्थ है - सन्निधि या सामीप्य। किसी के बहुत समीप होने की अवस्था 'सन्निधि' होती है और न्यासकार ने कहा है, 'सन्निकर्ष - प्रत्यासत्तिः संश्लेषश्च'।[12] उन्होंने यहां पर प्रत्यासत्ति अर्थ का ग्रहण किया है, क्योंकि संश्लेष वर्णों में असंभव है। संश्लेष एक काल में ही होता है और वर्णों का क्रम से उच्चारण होने के कारण उनमें प्रध्वंस आ जाता है। इसलिए यहां संश्लेष अर्थ का ग्रहण नहीं हो सकता। महाभाष्य में भी कहा गया है कि यद्यपि वर्णों के उच्चरित प्रध्वंसी होने के कारण एक साथ प्राप्त नहीं हो सकते, फिर भी उच्चारण करने से बुद्धिगत पौर्वापर्य को लेकर सामीप्य हो जाता है।[13]बालमनोरमा[14], लघुशब्देन्दुशेखर[15] में 'सन्निकर्ष' का अर्थ 'सामीप्य' लिया गया है।

सूत्र - व्याख्या – विमर्श :- यहां 'संहिता' का आशय 'अर्ध मात्रा के काल के व्यवधान से रहित पूर्व व पर वर्णों का सामीप्य या सानिध्य', से है। महाभाष्य में भी कहा गया है - शब्दाविरामः संहिता, ह्रादाविरामः संहिता, पौर्वापर्यमकालं व्यवेतं संहिता (महाभाष्य, 1/4/109) अर्थात् शब्दों में विराम का न होना ही संहिता है या प्रयोक्ता द्वारा बिना रुके जो वर्णों का उच्चारण या लेखन है, उसकी संहिता संज्ञा होती है। और ह्राद (अनुरणन या अस्पष्ट सूक्ष्म सी ध्वनि या घोष का शेष रह जाना) का जो विराम नहीं होना है, उसकी संहिता संज्ञा होती है। और भी कहा गया है कि काल के व्यवधान से रहित जो वर्णों का पौर्वापर्य या एक वर्ण के बाद दूसरे वर्ण का आना है, वही संहिता है। नव्यन्याय में संहिता की व्याख्या प्रचलित है -

'स्वभावसिद्धार्धमात्राकालिकव्यवायातिरिक्तव्यवायशून्यत्वम्'[16] अर्थात् दो वर्णों के उच्चारण के मध्य में स्वभावतः अर्धमात्रा काल का विराम तो विद्यमान रहता ही है, परंतु उससे अधिक न हो, वहीं पर दोनों वर्णों के मध्य संहिता होती है। वर्णों का यह सामीप्य प्रायः पूर्व का पर वर्ण के साथ होता है,[17] परंतु अवसान के विषय में परवर्ण का पूर्ववर्ण के साथ सन्निकर्ष ही संहिता होता है। "विसर्जनीयस्य सः" (8/3/34) सूत्र पर महाभाष्य में इसके विषय में कहा गया है - **परः संनिकर्षः संहितेत्युच्यते स यथैव परेण परः सन्निकर्ष एवं पूर्वेणाऽपि। एवं तर्ह्यनवकाशाऽवसानसंज्ञा संहितासंज्ञां बाधिष्यते। अथ वा संहितासंज्ञायां प्रकर्षगतिर्विज्ञास्यते, - साधीयो यः परः सन्निकर्षइति। कश्च साधीयः? यः पूर्वपरयोः।** अर्थात् संहिता में यह सन्निकर्ष जिस प्रकार से परवर्ण के साथ है, उसी प्रकार से पूर्ववर्ण के साथ भी होता है। इसलिए ही अवसान कार्य को संहिताधिकार में पढा है। पाणिनीय व्याकरण में तीन संहिताधिकार दिए गए हैं –

प्रथम संहिता अधिकार :- 'संहितायाम्' (पा. अ. 6/1/72) यह प्रथम संहिताधिकार सूत्र है। 'पारस्करप्रभृतीनि च संज्ञायाम्' (पा. अ. 6/1/157) सूत्र तक इस सूत्र का अधिकार चलेगा। इस अधिकार सूत्र के अंतर्गत 85 सूत्र हैं, जिनमें अच् संधि, प्रकृति भाव व सुट् आगम संबंधी सूत्रों का विधान किया गया है। दध्यत्र = दधि + अत्र, यहां संहिताधिकारस्थ 'इको यणचि' (6.1.77) इस सूत्र से यणादेश हो जाता है। यदि इन शब्दों के मध्य में संहिता न होती तो यह यणादेश भी नहीं होता।

द्वितीय संहिता अधिकार :- 'संहितायाम्' (पा. अ. 6/3/114) यह द्वितीय संहिताधिकार सूत्र है। इस सूत्र का अधिकार 'द्वयचोऽतस्तिङः' (पा. अ. 6/3/134) तक जाता है। ये 25 सूत्र वैदिक ऋषियों के नाम की उत्पत्ति से संबंधित हैं। इस अधिकार में प्रमुख रूप से पूर्वपद में उत्तरपद के मध्य में संहिता के विद्यमान होने पर पूर्वपद को दीर्घादेश का संकलन किया गया है। यथा - विश्वामित्र =विश्व + मित्र, 'विश्व' पूर्वपद को 'मित्र' उत्तरपद परे होने पर संहिता में दीर्घादेश का विधान किया गया है, जिससे 'विश्वामित्र' ऋषि का नाम सिद्ध होता है।

तृतीय संहिता अधिकार :- 'तयोर्य्वावचि संहितायाम्' (पा. अ. 8/2/108) इस सूत्र की व्याप्ति अष्टाध्यायी के अंतिम सूत्र तक जाती है। अंतिम के दो पाद इस संहिता अधिकार के अंतर्गत आते हैं। कुल 187 सूत्रों में हल् संधि से संबंधित सूत्रों का वर्णन है। यथा - ढो ढे लोपः (8.3.13) सूत्र से ढकार से परे संहिता का विषय होने पर ढकार का लोप होता है।

संहिता - नित्यता व वैकल्पिकता विचार :- पाणिनीय व्याकरण में तीन 'संहिता - अधिकार' हैं और तीनों ही स्थान पर संहिता नित्य है और जहां संहिता नित्य है, वहां संधि भी नित्य है। इसका परिगणन एक कारिका में किया गया है -

संहितैकपदे नित्या, नित्या धातूपसर्गयोः।
नित्या समासे, वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते।।[18]

कारिका में संहिता शब्द संधिपरक है। एक अखंड पद में अथवा प्रातिपदिक या धातु के साथ विभक्ति या दूसरे प्रत्यय का योग होने पर संधि नित्य होती है। जैसे - राम + औ = रामौ, भो + अ + ति = भवति। धातु और उपसर्ग के योग में भी संधि नित्य है जैसे :- उप + एति = उपैति। समास में भी संधि नित्य होती है। समास पद - विधि है, इसमें पदों का समास होता है, परंतु इन्हें बिना संधि के उच्चारण नहीं किया जा सकता। जैसे :- दैत्यारिः = दैत्य + अरिः, यहां दैत्य व अरि का बिना संधि के उच्चारण नहीं किया जा सकता, परंतु वाक्य में एक पद की दूसरे पद के साथ संधि वक्ता की इच्छा पर निर्भर करती है। वक्ता को कहां विराम इष्ट है और कहां नहीं, जहां विराम होगा अर्थात् संहिता नहीं होगी, वहां संधि भी नहीं होगी। यथा - इति + अपि = इत्यपि / इति अपि।

निष्कर्ष -

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि संहिता व संधि दोनों में सूक्ष्म भेद है। संहिता के विषय में जो आचार्य पाणिनि ने सूत्र दिया है वह एक संज्ञा सूत्र है। दो वर्णों के मध्य में बिना काल व्यवधान अर्थात् अर्ध मात्रा काल के व्यवधान से अधिक न हो, तो उन दोनों वर्णों के मध्य संहिता होती है। संहिता संज्ञा करने के उपरांत ही संधि आदि कार्य किये जा सकते हैं।

संदर्भ सूची

1. यः परः सन्निकर्षो नान्तरेण विकारम्। - ऋक्तन्त्र वृ. 3/1/7
2. पूर्वोत्तरवर्णानामविरामेणोच्चारणं सन्धानं संधिं संहितेति यावत्। - शाकटायन प्रक्रिया संग्रह, अच् संधिप्रकरण से पूर्व
3. स्वरसंस्कारयोश्च्छन्दसि नियमः। - वाजसनेयि प्रातिशाख्य - 1.1
4. परः सन्निकर्षः संहिता - (पा. अ. 1/4/109)
5. पदान्तान्पदादिभिः सन्दधदेति यत्सा कालाव्यवधानेन। - ऋक् प्रातिशाख्य - 2/2
6. अथर्व प्रातिशाख्य - 1/2 व्याख्या भाग
7. नानापदसन्धानसंयोगः पदसंहितेत्यभिधीयते। - तै. प्रा. 24/3
8. नानावर्णसंयोगो वर्णसंहिता। - तै. प्रा. 24/4 पर त्रिभाष्यरत्न भाष्य
9. वैयाकरणसिद्धांतकौमुदी - (पा. अ. 1/4/109)
10. 'परशब्दोऽतिशये' वर्तते। - न्यास, व्याख्या (पा. अ. 1/4/109)
11. अतिशयितः सन्निधिः संहिता। - वै. सि. कौ. (पा. अ. 1/4/109)
12. न्यास, व्याख्या - भाग (पा. अ. 1/4/109)
13. पौर्वापर्यमकालं व्यवेतं संहिता। - महाभाष्य (1/4/109)
14. 'सन्निकर्षः सामीप्यम्।' - लघुशब्देन्दुशेखर - (पा. अ. 1/4/109)
15. 'सन्निकर्षः सामीप्यम्। अर्धमात्राधिककालव्यवधानाऽभावः'। - बालमनोरमा - (पा. अ. 1/4/109)
16. सुधा टीका - (पा. अ. 1/4/109) पर व्याख्या व 'स्वभावसिद्धार्धमात्रातिरिक्त कालव्यवायेन रहितम्' - लघुशब्देन्दुशेखर
17. सन्निकर्षश्च प्रायः परेण, क्वचित्पूर्वेणापि। - लघुशब्देन्दुशेखर - (पा. अ. 1/4/109)
18. लघुसिद्धांतकौमुदी (6/1/77)पर भैमी व्याख्या